पाठ–16

अपना पराया (वैज्ञानिक लेख)

लेखक - हरसरन सिंह विश्नोई

प्रस्तावना

जब कोई हमारे घर का दरवाजा खटखटाता है, तो हम उसको पहचानने का प्रयास करते हैं। यदि हम उसे जानते हैं, तो हम उसका स्वागत करते हैं। यदि नहीं, तो दरवाजा ही नहीं खोलते। वह पराया होता है, इसीलिए उसे अन्दर नहीं आने देते। इसी प्रकार बाजार से जब हम कोई चीज खरीदकर घर ले आते हैं तो वह हमारी हो जाती है, बाकी सब परायी। इसी प्रकार क्या आप जानते हैं कि हमारा शरीर तंत्र भो अपने पराए की पहचान करता है ? हाँ, करता तो है, लेकिन कैसे? कुछ अलग ढंग से। आइये, इस पाठ में हम इस पहचान करने की शरीर तंत्र की क्षमता और उसके व्यवहार के ढंग को जाने।

सारांश

आपकी उंगली में कभी कोई **काँटा** अवश्य **लगा** होगा। उस **काँटे** को आप अपनी चुटकी, चिमटी अथवा सई से निकाल देते हैं। यदि **काँटे** का कुछ अंश त्वचा में ही गड़ा रह जाए, तो **वहाँ** गाठ सी बन जाती है। जब हमारी **आँख** में धूल या कोयले का कण चला जाता है तो हमारी **आँखों** से आंसू निकलने लगते हैं। **छींकें** सभी को आती हैं, स्वस्थ अवस्था में भी दिन में एक दो छीकें आ जाना कोई विचित्र बात नहीं। मुख के भीतर जीभ एक द्वारपाल जैसा कार्य करती है। खाने–पीने के प्रत्येक पदार्थ का स्वाद लेकर वह उसे परख लेती है।

खाई हुई प्रत्येक वस्तु तब तक शरीर का अंश नहीं बनती, जब तक आमाशय और अंतड़ी उसे पचाकर रक्त में नहीं **पहुँचा** देते। कभी–**कभी** खाई हुई वस्तु को आमाशय स्वीकार नहीं करता और उसे उल्टी के रूप में शरीर से बाहर निकाल फेंकता है। इस तरह पेट एवं आमाशय भी एक प्रकार से द्वारपाल **हैं**। शरीर में होने वाली जिन प्रतिक्रियाओं का ऊपर उल्लेख हुआ है, वे किसी न किसी रूप म शरीर की सुरक्षात्मक **प्रतिक्रियाएँ** हैं। ये **प्रतिक्रियाएँ** बाहरी बेमेल अथवा हानिकारक पदार्थों को शरीर में अवशोषित होने से रोकती हैं।

वातावरण में असंख्य रोगाणु होते हैं। ये हमारे शरीर में प्रवेश पाने का प्रयत्न करते हैं, ताकि उन्हें आश्रय के साथ–साथ भोजन भी मिल सके। शरीर के ऊतकों को खा–खाकर ये पनपते बढ़ते और प्रजनन करते हैं। इनके प्रभाव से भांति–भांति के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर इन रोगाणुओं को भीतर प्रविष्ट होने से रोकने का प्रयत्न करता है।

त्वचा देह रूपी दुर्ग की बाहरी दीवार है। यह दीवार शरीर की **मुख्यतया** दो प्रकार से रक्षा करती है।

प्रथम : यह शरीर की नमी को भाप बनकर उड़ जाने से रोकती है।

दूसरी : वायु और वस्त्रादि के स्पर्श से अपने ऊपर आकर जमने वाले असंख्य रोगाणु को यह बाहर ही रोके रहती है।

सांस लेते समय वायु के साथ भांति–भांति के रोगाणु हमारी नाक द्वारा भीतर जाते हैं। इनमें से कुछ को तो नाक के बाल ही भीतर जाने से रोक देते हैं। कुछ रोगाणु नाक के भीतर के **श्लेष्मा** (लसदार स्त्राव) में चिपककर **फँस** जाते हैं। बलगम के रूप में फेंफड़ों से बाहर निकलने वाला यही **श्लेष्मा** अपने साथ रोगाणुओं का भी बाहर निकाल फेंकता है।

हमारे भोजन, दूध, पानी आदि में लुक छिपकर अनेक प्रकार के रोगाणु पहले **मुँह** में और फिर **मुँह** से आगे आहार नाल म **पहुँच** जाते हैं। हमने देखा कि शरीर की सुरक्षा में पहला योगदान त्वचा द्वारा और नाक, फेंफड़ें, **मुँह** और आहारनाल की भीतरी परतों द्वारा होता है, जो रोगाणुओं को ऊतकों में प्रवेश करने से रोकती **हैं**। इन परतों के कटने–फटने पर अथवा इनके कमजोर हो जाने पर रागाणु शरीर के ऊतकों में **पहुँच** जाते हैं। अतिसूक्ष्म विषाणु तो पतली त्वचा तथा भीतरी समूची परतों को भी भेदकर घुस जाते हैं। पर जो भी हो, इनका मुकाबला करने के लिए शरीर की सुरक्षा **व्यवस्थाएँ** भी सक्रिय हो जाती हैं। कई संक्रमण पूरे शरीर में न फैलकर स्थानीय होते हैं। कई प्रकार के रोगाणुओं के प्रति भक्षक कोशिकाओं की सेना भी पर्याप्त नहों होती। विषाणओं का तो ये भक्षक कोशिका **कोशिकाएँ** कुछ भी नहीं बिगाड़ सकतीं। इन विषाणुओं के अतिरिक्त जीवाणुओं से जो विष निकला करते हैं, वे भी भक्षक कोशिकाओं के प्रभाव से मुक्त होते हैं। अतः इन विषाणुओं तथा टॉक्सिनों से टक्कर लेने क लिए शरीर में कुछ विशेष रासायनिक अणु कार्य करते हैं, जिन्हें (एन्टीबॉडी) कहते हैं।

ये एन्टीबॉडी मुख्यतः गिलटियों की कोशिकाओं से बनते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये अपने अनुरूप केवल एक ही प्रकार के रोगाणु अथवा रोग विष से टक्कर ले सकते हैं। अधिकतर एन्टीबॉडी शरीर में पहले से मौजूद नहीं होते। रोगों के बचाव टीकों में यही सिद्धान्त काम में लाया जाता है। आज बीसियों प्रकार के टीके बन चुके हैं, जैसे–चेचक, पोलियो, टिटनेस, डिप्थीरिया, हैजा, टाइफाइड, क्षय रोग आदि से बचाव करने वाले। इस अपने पराए को पहचान करने और उससे जूझने के मोर्चे शरीर में जितनी ज्यादा संख्या में है, उतने ही ज्यादा वे विस्मयकारी भी हैं। हमारे शरीर में **पाँच इन्द्रियाँ** होती हैं।

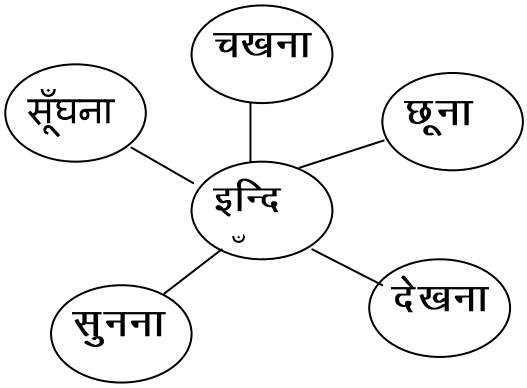

दुनिया की सारी चीजें दो प्रकार की होती हैं। सजीव और निर्जीव इन्हें जड़ और चेतन भी कहा जाता है।

अंततः यह कहना ही उचित होगा कि मनुष्य को अपने मन और शरीर को दृढ़ बनाये रखने के उपाय लगातार करते रहना चाहिए। एक पुरानी कहावत है, पहला सुख निरोगी काया। मन का स्वस्थ्य तभी बना रह सकता है, जब हम और हमारे आसपास के लोग वातावरण और खाद्य पदार्थ, **स्वच्छ**, असंक्रमित और आनंददायी **हों** । इसलिए 'सबकी मुक्ति में अपनी मुक्ति की युक्ति ही सबसे कारगर है।